International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157; Impact Factor: RJIF 5. 12
www.educationjournal.org
Volume 2; Issue 3; May 2017; Page No. 158-159

ध्वनिकार के पूर्ववर्ती आचार्य : रूद्रट्

डॉ0 पूनम राय

प्रवक्ता, सेंट जॉन्स अकादमी, करछना, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

सारांश

साहित्य–शास्त्र में जितनी कृतियाँ उपलब्ध हैं उनमें भरतकृत नाट्यशास्त्र प्राचीनतम है। नाम्ना यद्यपि यह नाट्यशास्त्र सम्बन्धी विषयों का ही ग्रन्थ प्रतीत होता है, किन्तु यह विविध कलाओं का आकार ग्रन्थ है। इतिहास में इस ग्रन्थ को इतना महत्व प्राप्त हुआ कि इसकी महिमा के प्रकाश में सजातीय ग्रन्थों की खद्योतमाला ऐसी निष्प्रभ हो गई कि काल की गति उन्हें सर्वथा विस्मृति के गर्त में धकेल गयी।

मूल शब्दः साहित्य–शास्त्र, नाट्यशास्त्र, रूद्रट।

प्रस्तावना

रूद्रट ने काव्यालंकार ग्रन्थ में 5 शब्दालंकारों और 57 अर्थालंकारों अर्थात् कुल 62 अलंकारों का निरूपण किया है। अर्थालंकारों में से चार अलंकार दो–दो बार वर्णित हुए हैं। इन अलंकारों को कम कर देने पर अर्थालंकारों की संख्या 53 रह जाती है। इनमें से केवल 26 अलंकार ही ऐसे हैं, जो इनसे पूर्ववर्ती आचार्यों, भरत, भामह, दण्डी, उद्भट, वामन द्वारा प्रस्तुत किये जा चुके थे। शेष 27 अलंकार सर्वप्रथम इन्हीं के ग्रन्थ में उपलब्ध होते हैं। इनकी आविष्कृति का श्रेय रूद्रट को दिया जाए या किसी अन्य अप्रख्यात आचार्य अथवा आचार्य वर्ग को, इस सम्बन्ध में निश्चय पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता, किन्तु इससे यह तो स्पष्ट ही है कि रूद्रट उक्त पाँचों आचार्यों के परवर्ती थे। रूद्रट वक्रोक्ति नामक काव्य तत्व के आधार पर भी भामह, दण्डी एवं वामन के परवर्ती ठहरते हैं क्योंकि रूद्रट से पूर्व वक्रोक्ति अभी एक व्यापक एवं सर्वसामान्य काव्यतत्व की प्रतिपादिका थी, इसे संकुचित एवं विशिष्ट रूप रूद्रट द्वारा ही मिला।

वामन को भामह और दण्डी और परवर्ती माना जाता है। इनका समय आठवीं शती का उत्तरार्द्ध स्वीकार किया गया है। रूद्रट वामन से परवर्ती हैं, अतः रूद्रट का समय आठवीं शती के बाद का मानना चाहिए। यह इनके समय की उच्चतम सीमा है। अर्थात् इससे पहले इनके अस्तित्व का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता।

रूद्रट के समय निर्धारण के प्रसंग में कतिपय तथ्य भी उल्लेख्य है– शिशुपालवध के टीकाकार वल्लभदेव ने इस ग्रन्थ की टीका में यह संकेत किया है कि उन्होंने रूद्रट प्रणीत एक अलंकारग्रन्थ की भी टीका प्रस्तुत की है।

हैस्श के अनुसार उक्त टीका में उद्धृत अनेक पद्य ऐसे हैं जो वस्तुतः रूद्रट के काव्यालंकार से ग्रहीत हैं।

इसके अतिरिक्त उद्भट प्रणीत काव्यालंकार के टीकाकार प्रतिहारेन्दुराज ने भी रूद्रट की कम से कम तीन कारिकाओं एवं उदाहरण उद्धृत किये हैं।

वल्लभदेव और प्रतिहारेन्दुराज दोनों का समय दशम शती का पूर्वाद्ध माना जाता है, अतः रूद्रट के समय की यही निम्नतम सीमा स्वीकृत की जानी चाहिए अर्थात् इसके बाद उसका जीवन नहीं समझना चाहिए।

इस प्रकार उक्त दोनों सीमाओं 8वीं शती का उत्तरार्द्ध और 10वीं शती का पूर्वार्द्ध को देखते हुए रूद्रट का समय नवी शती का मध्य भाग मानना चाहिए। किन्तु यही एक शंका उत्पन्न होती है कि आनन्दवर्द्धन ने जो कि रूद्रट का समकालीन माना जाता है न तो इनके किसी सिद्धान्त का उल्लेख किया है और न उनके ग्रन्थ काव्यालंकार से कोई कारिका या उदाहरण प्रस्तुत किया है, इसका कारण क्या हो सकता है? इसका एक तो सम्भव कारण यह है कि उन्होंने रूद्रट के इस ग्रन्थ को नहीं देखा होगा, शायद उन्हें यह उपलब्ध ही न हुआ हो। दूसरा कारण यह कि इन्होंने इसे अपने ध्वनिसिद्धान्त से किंचित अलग सा पाकर अथवा रूद्रट की कुछ एक धारणाओं से असहमत होते हुए इसे उदधृत करने की आवश्यकता ही नहीं समझी। किन्तु दूसरा कारण मनस्तोषक प्रतीत नहीं होत, क्योंकि आनन्दवर्द्धन जैसा मर्मविद् एवं प्रबल आचार्य रूद्रट की विरोधी धारणाओं को उदधृत करने के उपरान्त उनका खण्डन अवश्य करता, विशेषतः उस स्थिति में जबकि उन्होंने अनेक पूर्ववर्ती मान्यताओं का खण्डन किया है, तथा अनेक ग्रन्थों एवं ग्रन्थकारों को उद्धृत किया है, जबकि उन्हें अपने ग्रन्थ की वृत्ति में ऐसे प्रसंगों को उद्धृत करने का पर्याप्त अवसर भी प्राप्त था, और जबकि रूद्रट का काव्यालंकार कोई सामान्य कोटि का ग्रन्थ भी नहीं है कि जिसे उद्धृत करने की कोई आवश्यकता नहीं समझी हो। अस्तु उपर्युक्त पहला कारण ही मान्य है कि उन्होंने इस ग्रन्थ का किसी कारण से नहीं देखा होगा। रूद्रट का समय विक्रमीय नवम शताब्दी का मध्यकाल जान पड़ता है। ये रसमत से प्रभावित होकर भी अलंकारवादी आचार्य हैं। इन्होंने सभी अलंकारवादी आचार्यों से रस का विस्तार के साथ विवेचन किया है। इन्होंने अपने काव्यालंकार में सबसे पहले रस का स्वतन्त्र रूप से विवेचन प्रस्तुत किया है। काव्य में रस के महत्व की अनेक प्रकार से घोषणा की है–

ननु काव्येन क्रियते सरसानाभवगमश्चतुर्वर्गे।
लघु मृदु च नीरसेभ्यस्ते हि त्रस्यन्ति शास्त्रेभ्यः।।
तस्भान्तत्कर्त्तव्यं यत्नेन महीयसा रसैर्युक्तम्।

रस के विभिन्न भेदों के साथ ही साथ नायिका–भेद का भी वर्णन इन्होंने किया है जो काव्यालंकार के चार अध्यायों (12 से 15) में समाप्त हुआ है। इनका रस विवेचन विस्तृत एवं वैज्ञानिक है। इन्होंने भरत के आठ रसों की संख्या दस कर दी है तथा शान्त एवं प्रेयान को रस के अन्तर्गत स्थान दिया है।

श्रृंगारवीरकरूणा वीभत्सभयानककाद्भुता हास्यः।
रौद्रः शान्तः प्रेयानिति मन्तव्या रसाः सर्वे।।

रूद्रट प्रथम आचार्य हैं जिन्होंने रस का विवेचन काव्य को दृष्टि में रखकर किया है। भरत की रस–मीमांसा नाटक पर आधारित थी,

किन्तु रूद्रट रस–सिद्धान्त काव्य की दृष्टि से निर्मित हुआ है। रस का महत्व बताते हुए रूद्रट ने कहा है कि रस के अभाव में कोई भी काव्यशास्त्र की भांति नीरस हो जाता है, अतः कवियों को रस–निरूपण सतर्क होकर करना चाहिए। रूद्रट के इस कथन में स्पष्ट रूप से रस के प्रति आकर्षण का भाव प्रकट होता है और यह भी सूचित होता है कि वे रस को काव्य का अनिवार्य तत्व मानते हैं।

ज्वलदुज्ज्वलवाक्प्रसरः सरसं कुर्वन्महाकविः काव्यम्।
स्फुटमाकल्पनभनल्पं प्रतनोति यशः परस्यापि।।

रस को काव्य का सर्वाधिक उपयोगी तत्व मानते हुए रूद्रट ने बताया है कि रस के समावेश से काव्य में मोहकता आ जाती है और पुरूष उसमें रमण करने लगते हैं।

एते रसा रसवतो रमयन्ति पुंसः सम्यग्विभष्यरचिताश्चतुरेणचारू।
यस्मादिमाननीधगम्य न सर्वरम्यं काव्यं विधातुमलमत्त तदाप्रियते।।

रूद्रट ने कहा है कि जिस प्रकार का आनन्द श्रृंगार एवं करूण रस से प्राप्त होता है, उसी प्रकार की आनन्दानुभूति शान्त रस के द्वारा भी हो सकती है। इस प्रकार का विचार प्रकट कर इन्होंने शान्त रस की महत्ता सिद्ध की है एवं भरत के प्रतिकूल विचार भी प्रकट किया है।
इस प्रकार के विवेचन में रूद्रट की स्वतन्त्र मेधा का परिचय प्राप्त होता है।

रसनाद्रसत्वमेषां मधुरादीनामिवोक्तमाचार्यैः।
निर्वेदादिष्वपि तन्निकाममस्तीति तेऽपि रसाः।।

रूद्रट ने परम्परागत चार वृत्तियों के बदले वृत्तियों की संख्या पाँ मानी है–

मधुरा, प्रौढ़ा, परूषा, ललिता और भद्रा।
मधुरा प्रौढ़ा परूषा ललिता भद्रेति वृत्तयाः पञ्च।
वर्णानां नानात्वादस्येति यथार्थ नाम फलाः।।

इन्होंने विभिन्न रसों के आधार पर रीतियों के सदुपयोग का निर्देश किया है और रीतियों का स्थान रस से गौण माना है। प्रेय, करूण, भयानक और अद्भुत रसों में वेदर्भी एवं पांचाली का एवं रौद्र रस में लाटी और गौडी का प्रयोग होना चाहिए, शेष रसों के लिए कोई नियम नहीं है।

वैदर्भीपाञ्चाल्यौ प्रेयसि करूणे भयानकाद्भुतयोः।
लाटीयागौडीये रौद्रे कुर्याधथौचिव्यम्।।

श्रृंगार रस की उत्पत्ति पुरूष और स्त्री की परस्पर कामानुवृद्धि प्रकृति के कारण होती है। इसके दो भेद हैं – संयोग एवं विप्रलम्भ। सतत् साथ रहने को संयोग एवं वियोगावस्था को विप्रलम्भ कहते हैं। पुनः श्रृंगार के दो भेद हैं – प्रच्छन्न और प्रकाश।
व्यवहार+प्रकाशश्च।
इन्होंने विप्रलम्भ श्रृंगार के चार भेदों का उल्लेख विस्तार के साथ किया है – प्रथमानुराग, मान, प्रवास और करूण। शान्त रस का वर्णन करते हुए रूद्रट ने कहा है कि इसका स्थायी भाव सम्यक् ज्ञान है तथा विषययुक्त शब्दादि विभाव एवं जन्म, जरा और मरणजन्य त्रास अनुभाव होते हैं। शान्त रस सम्यक् ज्ञान के स्फुरण होने से होता है जिससे नायक विगतेच्छ या वीतराग हो जाता है।
सम्यग्ज्ञानप्रकृतिः तत्र जायन्ते।
रूद्रट की रस–मीमांसा भरत से प्रभावित है। इन्होंने रस का विवेचन स्वतन्त्र–रूप से किया है, उसे अलंकार, रीति अथवा गुण में अन्तर्भावित नहीं किया। रूद्रट का आर्विभाव ऐसे सन्धि–स्थल में हुआ था जब अलंकार, गुण एवं रीति सिद्धान्तों की तूती बोलती थी एक ध्वनि सम्प्रदाय विकास के गर्म में अंगड़ाई ले रहा था। ऐसे सन्धि युग में रूद्रट का रस–विवेचन उनकी आधारभूत दृढ़ता का परिचायक था। यद्यपि इनका रस विवेचन बहुत कुछ भरत का आधार ग्रहण किये हुए है। भरत के बाद उद्भट ने नव रसों को स्वीकार किया था किन्तु सर्वप्रथम रूद्रट ने ही दसवें रस प्रेयान् का वर्णन किया। विद्वानों ने इन्हें मूलतः अलंकारवादी कहा है और अपने कथन की पुष्टि के लिए अलंकार सर्वस्वकार राजानक रूय्यक के कथन को भी उद्धृत किया है, किन्तु समग्ररूप से विचार करने पर रूद्रट रसमत के अधिक निकट जान पड़ते हैं।
रूद्रट ने वस्तुतः ध्वनिकार के रस–विवेचन का मार्ग सुगम कर दिया था।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अभिनव भारती, अभिनवगुप्त, गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, बड़ौदा; 1963।
2. काव्यालंकार, भामह, बाल मनोरमा सीरीज, मद्रास; 1956।
3. काव्यालंकार, श्री रामदेव शुक्ल, चौखम्बा–विद्याभवन, वाराणसी; 1967।
4. रस–सिद्धान्त, डा0 नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली; तृतीय संस्करण; 1974।
5. रस–सिद्धान्त स्वरूप विश्लेषण, आनन्द प्रकाश दीक्षित, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली; 1972।
6. रस–गंगाधर, चिन्मयी माहेश्वरी, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर–4; 1974।
7. रस–गंगाधर, पण्डितराज जगन्नाथ, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी; 1987।
8. काव्य–दर्पण, विद्या वाचस्पति पंडित रामदहिन मिश्र, ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना; 1973।
9. भारतीय साहित्य शास्त्र, पं0 बलदेव उपाध्याय, नन्द किशोर एण्ड सन्स, वाराणसी; 1963।
10. काव्य–दर्पण, विद्या वाचस्पति पंडित रामदहिन मिश्र, ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना; 1973।
11. ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धन, गौतम बुक डिपो, नई सड़क, दिल्ली; 1952।
12. भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिनिधि सिद्धान्त, प्रो0 राजवंश सहाय 'हीरा', चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी; 1967।
13. काव्यालंकार (नमिसाधु टीका सहित), रूद्रट, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी; 1966।
14. काव्यालंकार सार–संग्रह एवं लघुवृत्ति की व्याख्या, डा0 राममूर्ति त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग; 1966।
15. श्रृंगाररस भावना और विश्लेषण, रमाशंकर जैतली, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर; 1972।
16. श्रीवाग्भटाचार्य विरचितः रसरत्न समुच्चयः, पं0 श्री धर्मानन्द शर्मणा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, वाराणसी, पटना; 1962।